मंगलवार, दि. २३-१२-१९५२,
चौथा अधिकार, प्रवचन नं. ४

मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ-९२। '**मिथ्याचारित्र का स्वरूप।**' यहाँ मिथ्याचारित्र... मिथ्यादर्शन का स्वरूप आ गया, मिथ्याज्ञान का आ गया और अनादि काल में मिथ्याचारित्र, जो मिथ्या मान्यता करके करता है उसकी यह व्याख्या है। कहते हैं कि '**अपना स्वभाव तो दृष्टा-ज्ञाता है;...**' यहाँ से शुरू किया। अपना स्वभाव तो देखना और जानना मात्र उसका स्वरूप है। फिर भी वह देखता और जानता है, उसमें इष्ट-अनिष्टपना मानकर जो राग-द्वेष करता है उसको मिथ्याचारित्र कहते हैं। क्योंकि इस राग-द्वेष के कारण कोई पदार्थ की हयाती रहे ऐसा माने, किसी की अहयाती रहे ऐसा माने, इसलिये राग-द्वेष निरर्थक है। उसके राग-द्वेष के आधीन कहीं परपदार्थ अनुकूलता की हयाती और प्रतिकूलता का अभाव उसके राग-द्वेष के आधी नहीं है। फिर भी मानता है कि मैं राग करूँ तो मुझे इस पदार्थ की अनुकूलता की हयाती रहेगी। द्वेष करूँ तो यह प्रतिकूलताएँ दूर होगी। इस राग-द्वेष को यहाँ निरर्थक मिथ्या कहा है। यहाँ तक आया है, देखो!

इसको मैं परिणमित करता हूँ, इस प्रकार व्यर्थ ही मानता है। वहाँ तक आया था न? बालक का दृष्टान्त आया था न? बैलगाड़ी तो उसके बिना चलती है, फिर भी बालक हाथ लगाकर माने कि यह मेरे से चलती है, वह तो मिथ्या भ्रांति है। जगत के अनंत पदार्थ है वह द्रव्यरूप बड़ी बैलगाड़ी है। उसका समय-समय में परिणमन-पर्याय हो, उस परिणमन की बैलगाड़ी चलती है वह द्रव्य के कारण चलती है, कोई अन्य पदार्थ के कारण नहीं है। फिर भी अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण यह शरीर, कुटुम्ब, जाति, देश, लक्ष्मी, व्यवस्था इत्यादि मैंने ध्यान रखा इसलिये हुआ। और मैंने ध्यान नहीं रखा इसलिये वह नहीं हुआ। ऐसे राग-द्वेष को यहाँ मिथ्या कहते हैं।

ज्ञानी को राग-द्वेष होते हैं वह, पदार्थ को इष्ट-अनिष्ट मानकर नहीं होते हैं। वह तो उस पर्याय की कमजोरी के कारण राग-द्वेष हो, उस वक्त भी ज्ञानी तो ज्ञाता और दृष्टा ही है। मेरा स्वभाव ही ज्ञाता और दृष्टा है। राग को बदलना भी नहीं, राग को टालना भी नहीं, राग को नया उत्पन्न करूँ ऐसा भी नहीं और राग-द्वेष से अन्य वस्तु की अनुकूलता रहेगी और प्रतिकूलता टलेगी ऐसी मान्यता धर्मी की नहीं होती। समझ में आया?

वह पदार्थ जब इच्छानुसार न परिणमे '**तब क्यों नहीं परिणमाता?**' और फिर

भी इच्छानुसार जब कदाचित् उसके काल में वह परपदार्थ हो तब, इसको मैं ऐसे परिणमाता हूँ, ऐसा वह असत्य मानता है। '**यदि उसके परिणमाने से परिणमित होते हैं...**' यह शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह वाणी वह आत्मा के परिणमाने से परिणमे '**तो वे वैसे परिणमित नहीं होते...**' जब वह पदार्थ भाषारूप होता नहीं, शरीर चलने की क्रिया करता नहीं, लक्ष्मी लक्ष्मी के कारण आती नहीं, लक्ष्मी लक्ष्मी कारण जाने योग्य जाती नहीं, मकान मिलने के लायक मकान आता नहीं, मकान टूटने लायक टूटता नहीं, '**तब क्यों नहीं परिणमाता?**' तब वह क्यों अन्य को बदलता नहीं? उसके कारण दूसरे परिणमते नहीं। ऐसे परिणमित करूँ, पुत्रों को ऐसे परिणमित करूँ, पुत्रीओं को ऐसा करवाऊँ, दूसरों को शिक्षा दूँ, पुत्रों को, पुत्रीओं को मैं ऐसी शिक्षा दूँ कि मेरे घर में कोई अशिक्षित रहे नहीं। तो क्या तू शिक्षा दे सकता है?

अज्ञानी का वह राग पर की पर्याय को परिणमाने में निरर्थक है, इसलिये मिथ्याचारित्र कहा है। और द्वेष से दुश्मन को परेशान कर दूँ, उसका पेशाब छुड़वा दूँ, समीप में कहीं रहने न दूँ। हम पैसेवाले हैं, हमारे समीप कोई प्रतिकूलता करे तो हम रहने न दे। कोर्ट में अमलदार अधिकारी में भी हमारी सिफारीश चलती है तो उसको रहने नहीं देंगे। मूढ़ का द्वेष निरर्थक मूढ का है। क्योंकि उस द्वेष के कारण वह अवस्था होनेवाली नहीं है। और उसके कारण जब हो, तब वह मान बैठता है कि... देखो! यह कहते हैं, '**इसलिये यह निश्चय है कि अपने करने से किसी का सद्भाव या अभाव होता नहीं।**' सिद्धांत तो यह है।

अपनी इच्छानुसार शिष्य को समझा दूँ, दो घड़ी में तुझे समझा दूँ, दो दिन में तुझे पोपट जैसा बना दूँ। मान्यता सच्ची है? किसी की ताकत है? कोई पदार्थ का परिणमना और उसको समझन अथवा असमझन होनी, वह तो उसके आधारित है। किसी के आधार से नहीं है। अपनी इच्छानुसार पदार्थ का परिणमन तो कभी नहीं होता। यह सिद्धांत। बराबर होगा यह? ये पुत्र-पुत्रीयाँ, पैसा-बैसा, शरीर, दवाई-पानी, हवा। दवा, हवा और पानी इच्छा के कारण मिलते होंगे कि नहीं? पदार्थ का पर का आना, जाना, परिणमित होना कदापि अपनी इच्छानुसार होता नहीं।

कदाचित् हो, ध्यान रखना! तो ऐसा योगानुयोग (होने पर)। क्या कहा? कदाचित् हो तो ऐसा योगानुयोग होने से होता है, योगानुयोग से। यहाँ इच्छा का होना और वहाँ उसके कारण परिणमित होना। इसकी इच्छा के कारण नहीं। कौए का बैठना और डाली का टूटना। वह कौना माने कि मेरे वज़न से डाली टूटी। ऐसा बनता नहीं। अज्ञानी अनादि का स्वयं का चिदानंद ज्ञायक स्वभाव, जिसके द्रव्य-गुण और पर्याय

अभेदरूप हो, ऐसा जिसका ज्ञायकस्वभाव है, उसको नहीं जानते हुए राग-द्वेष में प्रीति, रुचि और द्वेष करके और परपदार्थ में इष्टपना-अनिष्टपना मानकर परिणमाना चाहता है।

कदाचित् हो तो ऐसे योगानुयोग से। योगानुयोग माने क्या समझ में आया? इच्छा का होना, शरीर में रोग का मिटना। अज्ञानी माने कि मैंने इच्छा करी इसलिये दवाई लाया और रोग मिट गया। इच्छा करी,.... पर पत्थर गिरा और ... उस पत्थर को वहाँ जाना था योगानुयोग, इच्छावाले ने माना कि मेरी इच्छा से यह पत्थर लगा। इच्छा करी कि इसका पचास हजार का मकान पच्चीस हजार में ले लेना है। कुदरती ऐसा ही हुआ। लेनेवाले ने कहा, कमजोर है, नर्म है, कोई लेगा नहीं, ऐसा है, वैसा है, मेरे मकान के आगे कोई दूसरा मकानवाला आ सके ऐसा नहीं है, तेरा सब मुफ्त में जायेगा। बेच दे। समझ में आया? ऐसी इच्छा करी और काम हो गया। मूढ को ऐसा हो जाता है कि, देखा! मेरी इच्छा कैसी काम कर गयी! बराबर समझाया। ढीला हो गया, लो। योगानुयोग होने पर हो जाय, और अज्ञानी माने कि मेरी इच्छानुसार होता है। वह मिथ्याचारित्र है।

‘**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**’ लो। यह एक सिद्धांत है। आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, कर्म और स्पर्श, दाल, चावल, रोटी, सब्जी, मकान, इज्जत, कीर्ति, पैर का उठना, होंठ का हिलना, शरीर का हिलना ‘**बहुत परिणमन...**’ जड़ की अवस्था का होना तो स्वयं की इच्छा विरुद्ध ही होते देखा जाता है। सोया हो, ऐसे बायीँ ओर सोया हो, पुनः दायीँ ओर सोने का मन हो जाये। मेरा यह पैर उठता नहीं है, झुनझुनी हो गयी है, थोड़ी देर में झुनझुनी हो जाये। इच्छानुसार तो उसका कुछ भी होता नहीं, बहुत परिणमन। कोई बार योगानुयोग हो जाये। इसलिये ‘बहुत’ लिखा है। योगानुयोग हो जाये तो इच्छा से नहीं हुए हैं। परन्तु योगानुयोग भी बहुत नहीं होते हैं, ऐसा यहाँ सिद्धांत सिद्ध करना है। उसके राग अनुसार नहीं होता है और उसके द्वेष अनुसार भी नहीं होता है। पहले बोलने की इच्छा हुई कि ऐसा बोलू, फिर मन किया, वैसा बोलू। अरे..! भाषा तो ऐसी निकालनी थी, यह श्लोक ऐसे बोलने थे, लेकिन बोलना हुआ नहीं। इस ढंग से नहीं बोला गया, जो देशी, जो ढंग, जो प्रकार और जो मज़ा लेनी थी, (ऐसा) बोला नहीं गया। छोड़ दे, फिर से बोलू, लो। तब दूसरे ढंग से बोलूँगा। क्या तू बोल सकता है?

इच्छा अनुसार बोलना, इच्छा अनुसार देखो, एक पैर ऐसे रखा, पुनः इच्छा हुई कि दूसरा पैर ऐसे रखूँ। पुनः इच्छा हुई, वह पैसे उठाकर ऐसे रखूँ, पुनः इच्छा हुई कि दूसरा पैर उठाकर ऐसे रखूँ। इच्छा अनुसार कुछ होता नहीं। यूँ ही चेष्टा करता

रहता है। स्थिर पैर रखूँ, वहाँ थी केले का छिलका। पैर फिसलकर गिरे। कहो, समझ में आया? गोरधनभाई! होता है ऐसा?

मुमुक्षु :--

उत्तर :-- क्या प्रत्यक्ष है? कहाँ प्रत्यक्ष है? दो मिनिट में दस्त करके उठने का मन करे, (फिर भी) पंद्रह मिनिट रुकना पड़ता है। क्या प्रत्यक्ष है? पेशाब बन्द हो जाये तब आधे घण्टे में एक-एक बूँद ऊतरता है। क्या प्रत्यक्ष है? उसके परिणमन अनुसार देखकर और अज्ञानी की इच्छा अनुसार शरीर की ऐसी अनुकूलता हो पेशाब की धारा की। देखा? हमें कैसा दस्त तुरन्त आता है, दो मिनिट में बैठकर खड़ा हो गया। दो मिनिट में पेशाब हो गया। अरे..! रहने दे, वह इच्छा अनुसार नहीं हुआ है, वह तो उसके कारण हुआ है। रोग नहीं होता है? ... होता है कि नहीं? आधे घण्टे में मुश्किल से पेशाब खत्म हो। बूँद-बूँद आकर ठीक तरह से होता नहीं।

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' वह नहीं कहते हैं? पुण्यविजय, कितनी दस्त की पीड़ा, भाई! दस्त की पीड़ा। एक पुण्यविजयजी है न देरावासी, बेचारे यहाँ के प्रेमी हैं, अकेले। बहुत समय पहले, ऐसी लकड़ी रखते थे और दस्त जाने के लिये पीछवाड़े में लकड़ी डाले। तो भी दस्त इतना सख्त हो गया कि वह निकले नहीं। इच्छा अनुसार तेरी पर्याय हो, तब योगानुयोग होती है, इच्छा अनुसार नहीं होती है। बहुत परिणमन तो इच्छा विरुद्ध होते देखे जाते हैं। फिर भी अज्ञानी मानता है कि मैंने ऐसी इच्छा की, मैंने द्वेष किया तो देखो, रहने नहीं दिया। उस आदमी का नाम घर में रहने नहीं दिया। देखो न, ये राजा को मार देते हैं न। ऐसा मानते हैं कि हमने रशिया का ऐसा कर दिया। वर्तमान में इच्छा से हमने सब को राजाओं को उठा दिया, फलाने को ऐसा कर दिया। योगानुयोग ऐसा बनना था। वह पर्याय उस काल में वहाँ होनेवाली थी। अज्ञानी राग को निरर्थक करके ऐसा मानता है कि इस राग से यह काम हुआ।

'**बहुत परिणमन...**' तेरी इच्छानुसार होते हो तो बहुत इच्छाएँ होती है, यह लाओ, वह लाओ। ऐसे होता होगा? वह तो जगत के पदार्थ उसके परिणमन के क्रम अनुसार .. बदलने का नियम एक समय तीन काल में व्यवस्थित में बदलता नहीं। ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव भूलकर राग-द्वेष के कारण इष्ट-अनिष्ट मानकर निरर्थक कषाय करता है। इसलिये उसे मिथ्याचारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया?

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' पुत्र को कहे, बेटा! इतना एक-दो दिन में करना। बापू! लेकिन मेरे पास समय नहीं है। ... क्या करे? हैं? इच्छा विरुद्ध बहुत होता देखता है। पुत्र माने नहीं। लेकिन

दो दिन तो ठहर जा। नहीं, बापू! आप कहते हो लेकिन मुझे वेकेशन-छुट्टीयाँ है, मुझे सब रिश्तेदारों को मिलने जाना है। उसकी इच्छानुसार पुत्र भी परिणमता नहीं है। इच्छानुसार पुत्री परिणमति नहीं है, शरीर परिणमता नहीं है। पुस्तक आता नहीं, पुस्तक जाता नहीं। मकान इच्छा अनुसार होता नहीं। ऐसा होगा? हैं! नेमचंदभाई! ... का बहुत करने लगे, जब होना होगा तब होगा। वह पर्याय जिस क्षण, जिस काल में, जिस प्रकार से होनेवाली है उसमें कोई फेरफार करने को समर्थ नहीं है। परन्तु अज्ञानी को श्रद्धा बैठती नहीं। मिथ्यादृष्टि दूसरा सब करे--दया, दान, व्रत परिणाम। परन्तु वास्तविक तत्त्व का स्वभाव क्या है, उसका निर्णय करने को वह फूरसद लेता नहीं। तब तक उसे किंचित् भी धर्म होता नहीं।

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' इच्छा विरुद्ध ही, शब्द है। हैं! पुत्र पढ़े, ना पढ़े, शरीर निरोगी रहे, ना रहे, आहार-पानी मिले, ना मिले। समझ में आया? वह सब इच्छानुसार होता नहीं। फिर भी अज्ञानी अपने क्लेश से, कषाय से ऐसा मानता है कि हमारे से यह हुआ और हमारे से यह बिगड़ा। '**इसलिये यह निश्चय है कि अपने करने से किसी का सद्भाव...**' अपने करने से कोई भी अन्य पदार्थ की मौजूदगी या उसका स्वभाव होता नहीं। कोई भी चीज ना हो, एक रजकण यहाँ रखूँ, या अभाव करूँ वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। फिर भी अज्ञानी... (सद्भाव-अभाव होते ही नहीं), '**तो कषायभाव करने से क्या हो?**' लो। कोई पदार्थ तेरी इच्छानुसार तो होता नहीं, तेरे द्वेष अनुसार भी होता नहीं। मांगीरामजी! होता है? शरीर भी नहीं होता है। शरीर में भी उसकी जो पर्याय होगी वह होगी। उसे बदलने में इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र कोई बदलने को समर्थ है नहीं। '**तो कषायभाव करने से क्या हो?**' मुफ्त का हैरान हो रहा है। लोग कहते हैं, कुछ नहीं है, मुफ्त में क्यों करता है? तेरे से कुछ हो और मुफ्त में करता है? लेकिन राग-द्वेष किये बिना अज्ञानी रहता नहीं, और पर का कार्य तो उसके आधीन होता नहीं। केवल स्वयं ही दुःखी होता है। जलन.. जलन हो। अरेरे..! यह इच्छा की, हुआ नहीं। ये लड़कों ने माना नहीं, स्त्री ने माना नहीं, घर में माने नहीं, बाहर में मेरी इज्जत किस काम की? बाहर मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँ पाँच हजार लोगों में? तेरे घर में तो तेरा ठिकाना नहीं है, बाहर में क्या लेकर आया? मुफ्त में घर के सदस्यों को समझाने की इच्छा करता है। बराबर होगा यह? मोहनभाई! पुत्र बराबर चलते हैं? इच्छा अनुसार चलते होंगे कि नहीं?

'**जैसे--किसी विवाहादि कार्य में जिसका कुछ भी कहा नहीं होता,...**' कहते हैं न? दुल्हे की बुआ मैं। बारात में कोई जाने नहीं और दुल्हे की बुआ

मैं। कोई पूछे नहीं तो भी डेढ़ सयानी बनती फिरे वह औरत। इसका करना, उसका करना। लेकिन तुझे पूछता कौन है? ऐसे लड़के कोई पूछे नहीं तो भी डेढ़ सयाना बनता फिरे। '**विवाहादि...**' आदि शब्द से कोई कार्य में, गहने लाने में, कपड़े लाने में, मकान कितनी क़ीमत का करना, कितन समय में पूरा करना है ऐसा विचार चलता हो, उसमें '**विवाहादि कार्य में जिसका कुछ भी कहा नहीं होता, वह यदि स्वयं कर्ता होकर कषाय करे...**' मुफ्त में कर्ता बनकर विकार राग-द्वेष करे। मैं कहता हूँ, मेरी तो सलाह लो, मेरी तो सलाह लो। लेकिन तुझे कौन पूछता है? लेकिन मेरी सलाह नहीं? घर के व्यवहार में, नहीं जाते हैं, जाओ! लेकिन उसको सलाह दिये बिना चलता नहीं।

'**स्वयं कर्ता होकर कषाय करे...**' घर का बड़ा सदस्य बनकर स्वयं दुःखी होता है, उसमें दूसरा कौन दुःखी होता है? दूसरा कोई दुःखी होता नहीं। वैसा यहाँ भी समझना। वैसे कषाय कर तो (भी) जैसा होनेवाला होगा वह होगा। तू राग-द्वेष करके दुःखी होगा, बाकी कुछ है नहीं। इस बात का निर्णय अज्ञानी करता नहीं और सिर्फ मंद कषाय की क्रिया में धर्म मानकर स्वभाव की सूझ पड़ती नहीं। स्वभाव की सूझ पड़ती नहीं और निरर्थक राग-द्वेष क्यों होते हैं, उसका ज्ञान होता नहीं। उसका निरर्थक राग-द्वेष का भी ज्ञान नहीं होता है और स्वभाव कैसा है उसका भी ज्ञान करता नहीं है। निरर्थक राग-द्वेष करके हैरान होता है।

'**इसलिये कषायभाव करना ऐसा है जैसे जल का बिलोना कुछ कार्यकारी नहीं है।**' पानी को बिलोने से मक्खन निकलता नहीं। पानी को बिलोने से हाथ चिकना होता नहीं। चिकना हो? ऐसे राग और द्वेष करे उसमें जगत के कोई पदार्थ का कार्य नहीं होता। पानी को बिलोने से हाथ चिकना हो तो, यहाँ उसके राग-द्वेष के कारण जगत के पदार्थ का कार्य हो। तीन काल में... पर की दया पालूँ, पर का ऐसा कर दूँ, तीन काल में कर सकता नहीं। तेरी इच्छा से पर की दया पले नहीं। तेरे द्वेष से पर से, पर से--शरीर से वियोग होता नहीं। मुफ्त में पानी बिलोने जैसा करता है। पानी बिलोते होंगे ये सब? हाँ? फावाभाई! पानी बिलोते होंगे?

'**जैसे जल का बिलोना कुछ कार्यकारी नहीं है।**' बिलोना समझते हो न? पानी में ... करना। '**इसलिये इन कषायों की प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहते हैं।**' लो। इसलिये मिथ्याचारित्र कहते हैं, हाँ! राग-द्वेष ज्ञानी को हो, वह तो प्रयोजन से होता है। प्रयोजन क्या? विषय की आसक्ति, स्वभाव में भान होने पर भी कमजोरी से होती है। पर का कार्य करने के लिये ज्ञानी को राग-द्वेष की इच्छा होती नहीं।

'**तथा कषायभाव होते हैं सो पदार्थों को...**' देखो! क्रोध, मान, माया, लोभ अज्ञानी को होते हैं, '**सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं...**' भाई! यहाँ अज्ञानी की बात लेनी है। यहाँ कषायभाव हो। वह कषायभाव होता है वह तो (उस) कार्य के समय उस काल में उस गुण का होता है, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। चारित्रमोह से चारित्र की स्थिरता आत्मा को न हो तब उस काल में चारित्रगुण की विपरीतरूपी राग-द्वेष इत्यादि का परिणमन उस-उस काल में होता है, उसे होता है, वह निरर्थक नहीं है। भाई! निरर्थक नहीं है। क्योंकि उस काल में वह राग, स्वभाव में स्थिरता नहीं है इसलिये होता है। लेकिन उस राग से कोई विषय में सुख मान लेता है यया द्वेष से दुश्मन का बुरा हो, ऐसा मानता है, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। समझ में आया?

अज्ञानी को कषायभाव होता है '**सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं,...**' यह अनुकूल है, यह इष्ट है, यह मुझे अनिष्ट है, यह मुझे प्रिय है, यह मुझे अप्रिय है, समझ में आया? यह मेरे निजी लोग हैं, ये विरोधपक्ष के हैं। हाँ, जितने विरुद्ध बोलनेवाले हैं उस पक्ष का आदमी ..., ऐसा करके द्वेष करता है। यह मेरे निजी लोग हैं, मेरे मण्डल का अनुकूल छोटा दल है, उसका यह आदमी लगता है। ऐसा करके राग करके उसे अनुकूल रखना चाहता है, द्वेष करके प्रतिकूल को दूर करना चाहता है। वह मिथ्याचारित्र एवं मिथ्या राग-द्वेष, अज्ञानभाव है। '**सो इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या है;...**' लो, पर वस्तु में, यह मुझे प्रियकर है, हितकर है, श्रेयकर है, अनुकूल है, इष्ट है ऐसा मानना वह मिथ्या है। ऐसे पर वस्तु में अप्रियकर है, अहितकर है, अप्रियकर है, अनिष्ट है ऐसा मानना भी मिथ्या है। लोग मानते हैं न? तूने आकर मेरा बिगाड़ा, मेरी इज्जत थी, हम बड़े थे, हमारी अधिकता थी, हम जाननेवाले थे। तेरे आने से हमारा यह सब मान जाता है। जेठाभाई! लोग ऐसी बातें करते हैं, लो न, बातें करते हों लोग। ... ऐसा हो गया। दौलत! तेरे यहाँ आने से हमारा मान-सम्मान चला जाता है। देखो, हम बातें करते हों उसमें मेरा बड़प्पन रहता है, तू ऐसा सयानापन करके मुफ्त में बैठा रहता है। वाह! लेकिन तू ... राग-द्वेष मिथ्या करता है, उसका तो कर। कोई वस्तु इष्ट-अनिष्ट है नहीं, वह तो ज्ञेय है, वह तो उसके कारण आती है और जाती है। कहीं तेरे कारण आती नहीं। '**इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या है।**'

देखो न! राजा भी अनुकूल न हो तो दिवान को प्रतिकूल लगता है। दिवान अनुकूल न हो तो राजा को ऐसा लगता है, इसका मान बढ़ गया, अब इसको निकालना कैसे? ऐसा हो जाता है, लो। समझ में आया? एकदूसरे को विचार ऐसा आये कि ... दिवान है और अन्दर से ... इसका मान बढ़ गया। मेरा राज तो कुछ.... मेरे हुक्म की तो कोई गिनती नहीं है।

ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु नाम धरानेवाले भी परस्पर जलते हैं. समझ में आया? जलते हो अन्दर में। अरे..! सच्चे आचार्य नहीं, हाँ! यह तो झूठे की बात चलती है। सच्चे आचार्य, उपाध्याय, मुनि ज्ञानी में ऐसा होता नहीं। अरे..! ये तो बड़ा सम्राट हो गया और मैं तो छोटा रह गया। इन सब साधुओं का ... बढ़ गया और पच्चीस-पचास शिष्य हो गये, मेरे एक भी शिष्य (नहीं है)। मुफ्त में मूढ मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष करके हैरान होता है। धर्म क्या है इसकी कुछ खबर नहीं है।

'**क्योंकि कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट है नहीं।**' इस जगत में तीन लोक के नाथ भी आत्मा को इष्ट नहीं है। ऐसा होगा? सर्वज्ञ भगवान भी आत्मा के लिये इष्ट नहीं है। परमेष्ठी कहलाते हैं न? परम इष्ट कहलाते हैं न। शुभराग आता है उसमें निमित्त होते हैं, इसलिये कहने में आता है। वास्तव में वह पदार्थ परमेष्ठी उसके हैं, आत्मा को इष्ट नहीं है। आत्मा का स्वभाव सो इष्ट है और निर्विकारी पर्याय सो इष्ट है और विकारी पर्याय सो अनिष्ट है। वास्तव में तो वह भी ज्ञाता का ज्ञेय है। कहो, समझ में आया? क्योंकि कोई पदार्थ इस जगत में इष्ट-अनिष्टरूप है नहीं। अपनी आत्मा को इष्ट मानना और पर को अनिष्ट मानना, यह भी मिथ्या है। समझ में आया? '**कैसे? सो कहते हैं :--**'

'**जो अपने को सुखदायक--उपकारी हो उसे इष्ट कहते हैं;...**' सुखदायक, उपकारी। लो, कहते हैं कि उपकारी कोई है नहीं। मुफ्त का मान बैठा है। भारी बात भाई! जिसको जो अपने को सुख का दायक निमित्त हो उसे उपकारी हो उसको इष्ट कहते हैं। तथापि '**अपने को दुःखदायक...**' दुःख का दातार--निमित्त और '**अनुपकारी हो उसे अनिष्ट कहते हैं। लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं,...**' लो। केवलज्ञानी भगवान भी उनकी पर्याय के कर्ता हैं, कहीं तेरी पर्याय के कर्ता नहीं हैं। कहो, समझ में आया? शत्रु का आत्मा भी उसकी पर्याय का कर्ता है, कहीं तेरी पर्याय का कर्ता नहीं है। समझ में आया?

'**लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं, कोई किसी को सुख-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**' लो, भगवान उपकारक है, वह तो स्वयं को राग (होता है), ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में रहने पर भी अस्थिरता होती है, इसलिये जब राग उसके काल में आये तब निमित्त पर लक्ष्य जाने पर, वे उपकारी हैं ऐसा आरोप किया जाता है। वास्तव में तो कोई उपकारी-अनुपकारी है ही नहीं। वह पदार्थ उपकारी नहीं है। वह तो राग आने पर आरोप किया जाता है। समझ में आया? अनारोप के भान बिना आरोप भी कैसा? मैं जाननेवाला ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मेरे चिदानंद स्वभाव में मेरी स्वयं की पर्याय निज स्वभाव की ओर जो ज्ञान की

मुड़ी, और बाकी रहा राग उसका भी मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। ऐसा स्वभाव वस्तु का है। इसके अतिरिक्त विपरीत मानता है।

इसलिये कहते हैं कि कोई पदार्थ किसी का कर्ता तो है नहीं कि तुझे कोई भगवान दे दे। दे दे ऐसा है? शास्त्र दे दे? समयसार पुस्तक दे दे? एक ही वस्तु हमेंशा है। ज्ञायक चैतन्यस्वभाव तो वह तो जानता ही है और जाननेवाले को क्रम में उस काल में जो राग आये, उस राग को लाना भी नहीं है, उस राग को कम भी नहीं करना है, उस राग को टालना भी नहीं है, वह तो ज्ञानस्वभाव जानने पर जो क्रम से पर्याय आये, उसे जानने का कार्य वह दूर से करता है। ऐसे स्वभाव को जाने बिना अन्य को उपकारी मानना वह भी मिथ्याभाव है। बराबर होगा यह? भारी बात भाई! शास्त्र में व्यवहार से तो उपकार है कि नहीं? यह तो निश्चय की बात चलती है। व्यवहार उपकार की व्याख्या साथ में की न। तूने तेरे ज्ञायक स्वभाव को, चिदानंद मेरा स्वभाव है ऐसे स्वभाव को जानने पूर्व भी शुभराग के ज्ञान के स्थान में देव-गुरु-शास्त्र ने कहा, चिदानंद-सूर्य तेरा है, ऐसा विकल्प और राग होने के ज्ञान में भी स्वभाव सन्मुख जाना और अभेद होना सो ठीक है, ऐसा जो विकल्प उठा और स्वभाव की रुचि की, तब उस विकल्प को और निमित्त को उपकारक गिनकर आरोप दिया जाता है। वास्तव में कोई पदार्थ उपकारी या अनुपकारी है नहीं। वह राग आया वह भी उपकारी नहीं है। भाई! क्या कहा?

मुमुक्षु :-- आरोप...

उत्तर :-- हाँ, आरोप माने यथार्थ नहीं।

मुमुक्षु :-- ... नहीं करना?

उत्तर :-- तत्त्वार्थ सूत्र में वह करना। उसकी पर्याय जब हो तब वह चीज आगे निमित्त होती है, उसको आरोप दिया जाता है। उपकार-अनुपकार शब्द बहुत आता है उसमें। जीव को मरण, जीवन, सुख-दुःख में पुद्गल का उपकार है। पुद्गल आत्मा को सुख में उपकार करता होगा? दुःख में उपकार करता होगा? वह तो तू दुःखी होने की पर्याय कर तब निमित्त को दुःख में उपकार कहा। सुखी होने का विकल्प कर तब लड्डु को सुख में निमित्त उपकारी है ऐसी बात की। जीवन तो आयुष्य के कारण रहे, पुद्गल को निमित्त कहा, आयुष्य पुद्गल को, संयोग को। वह तो निमित्त के कारण (कहा)। तेरा कार्य तो तेरे कारण होनेवाला हो, तब आरोप दिया गया है। उपकारी-अनुपकारी कोई पदार्थ है नहीं। देखो, यह पूरी बात।

तत्त्वार्थ सूत्र, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य उमास्वामी द्वारा रचित, उसमें भी कहते हैं कि जीव जीव को उपकार करता है। लो। उसमें ऐसा है। गुरु, शिष्य को

उपकार करते हैं और शिष्य, गुरु को उपकार करता है, ऐसा पाठ है। वह तो उमास्वामी का है उसमें। यहाँ ना कहते हैं। वहाँ तो निमित्त की हयाती का ज्ञान करवाते हैं। ज्ञान में भान के वक्त कौन-से गुरु निमित्त थे। समझ में आया? जीवन के समय कौन-से पुद्‌गल निमित्त थे, मृत्यु के समय कौन-से पुद्‌गल निमित्त थे, सुख-दुःख के समय कौन-से निमित्त थे, उस निमित्त का ज्ञान करवाने को वह कथन किया है। कोई उपकारी-अनुपकारी जगत में है नहीं। हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- संसार? संसार और स्वभाव तीन काल में तन्मय नहीं हुए हैं। उदयभाव संसार और स्वभाव पारिणामिकभाव--दोनों एकमेक तीन काल तीन लोक में हुए नहीं। क्या कहा? ज्ञायकपना स्वभावभाव और उदय संसारभाव, दोनों तीन काल में तन्मय नहीं है। यदि दोनों तन्मय हो तो अंधेरा और सूर्य दोनों एक हो जाये, वैसे विकार और निर्विकार दोनों एक हो जाये। स्वभाव सो स्वभाव है और विकार सो विकार क्षणिक संसार है। एक समय का विकार संसार है जीव में। वह स्वभाव में नहीं है। स्वभाव में उसका अभाव है। स्वभाव का उसमें अभाव है। अभावस्वभाव का भान होने पर जो थोड़ा राग रहा उसका वह ज्ञाता है। उसका ज्ञाता कहना भी व्यवहार है। संसार का जीव जाननेवाला है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। क्या कहा, समझ में आया? राग और विकल्प जो विकल्प उठता है, पुण्य-पाप, दया, दान वह संसार है। वह संसार का ज्ञाता है ऐसा कहना सो व्यवहार उपचार है। क्योंकि वह राग है इसलिये यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। वह उदय है इसलिये यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञाता का स्वभाव है इसलिये ज्ञान होता है। इसलिये ज्ञान और ज्ञाता का तन्मय एकत्व है। राग और संसार और आत्मा का एकत्व नहीं है। कहो, समझ में आया?

ऐसे स्वभाव का ज्ञान नहीं है और राग-द्वेष करके पर का उपकार मानता है। उपकार तो तेरे स्वभाव में एकाग्र हो, तब तेरा द्रव्य ही उपकारी है, दूसरा कोई उपकारी है नहीं। भारी बात भाई! ये सब व्यवहार का उथापन हो जायेगा। वह व्यवहार व्यवहार के काल में और व्यवहार की रीति में रहेगा। उलटा-सीधा करने जाये तो रहता नहीं। अज्ञानी कल्पना करे कि इसका नाम व्यवहार और इसका नाम राग, ये दया, दान, भक्ति साधन है। विकार चैतन्य में एकमेक नहीं है उसे तू साधन ठहराये तो... समझ में आया? वह साधन हो सकता नहीं। स्वभाव में तो स्वभाव का साधन नाम का एक गुण एकमेक है। ज्ञायक में एक साधन नाम का गुण तन्मय है। वह साधन है। राग और पुण्य विकल्प निरर्थक करके पर को उपकारी और अनुपकारी स्वीकारता

है।

‘**सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं,...**’ हो गया, लो। पूरी दुनिया उसका पर्यायधर्म, उसका परिणमन उसका कर्ता वह द्रव्य है। तेरे पर्याय में गुण के परिणमन का कर्ता तो गुण है। दूसरे के आधीन उसका परिणमन है नहीं। ‘**कोई किसी को सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**’ वह सब उमास्वामी ने कहे कथन निमित्त का ज्ञान करवाने का आचार्य का प्रयोजन था। उपकारी-अनुपकारी है ऐसा परमार्थ से सिद्ध करने का प्रयोजन नहीं था। ‘**सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**’ ओहो..! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र वह भी अनुपकारी वास्तव में नहीं है। तूने भाव माना था इसलिये आरोप दिया गया। श्रीमद् में ऐसा कहते हैं, भाई! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को आत्मा का प्रत्यक्ष घातक जाने बिना तेरा ज्ञान सच्चा होगा नहीं। प्रत्यक्ष घातक। सब कथनशैली तो जैसे आनेवाली होती है ऐसे आये। परन्तु परमार्थ क्या है यह उसे जानना चाहिये। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, कोई पदार्थ आत्मा के अतिरिक्त अनुपकारी कोई चीज ही नहीं है। अनुपकारी, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र भी अनुपकारी नहीं है। सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र परमार्थ से उपकारी नहीं है। फिर भी व्यवहार के ग्रंथ में ऐसा आये, अहो..! धर्मात्मा, जिनसे उपकार हुआ उनके उपकार को ही छिपाये, आया था न इसमें? सम्यक्ज्ञान दीपिका में आया था न? महा घातकी, पापी, मिथ्यादृष्टि संसारी है। अबी आया था न? जिससे ज्ञान हुआ, जिन निमित्त से ज्ञान हुआ उसको ही यदि छिपाये (तो वह) महापापी, घातकी गुरु को छिपानेवाला मिथ्यादृष्टि संसारी है। वाह! यहाँ कहे कि कोई उपकारी नहीं है। दलीचंदभाई! हें?

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- ... है। जब वहाँ स्वभाव का यथार्थ ज्ञान हुआ उसका निमित्त कौन था उसका, उसको उस प्रकार का विकल्प का वह काल उपकार का अथवा विनय का आये बिना उपचार से रहे ही नहीं। वास्तव में उपकार पर को माने तो वह उपकार भी नहीं है और स्वयं समझा भी नहीं है। कहो, समझ में आया?

दो बात। यहाँ कहे, उपकार-अनुपकार (है नहीं)। वहाँ कहे कि उपकार को छिपाये वह घातकी, महाघातकी, पापी मिथ्यादृष्टि संसारी है। लो, भाई! आया था न? सम्यक्ज्ञान दीपिका में। उस दिन कहा था, आया था न? दैनिक में लिखा है। सम्यक्ज्ञान दीपिका में, अनुभवप्रकाश में भी आता है। समझ में आया? भाई! किस अपेक्षा के कौन-से कथन क्या समझाते हैं उसको समझना चाहिये। स्वभाव को जाना तब उस भूमिका में यथार्थ ज्ञान होने पर उस काल में ज्ञान का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है तो ज्ञान

ने स्व को जानते हुए, उस वक्त राग कैसा होता है और इस ज्ञान में कौन निमित्त हुआ, वह ज्ञान का स्वपरप्रकाशक (स्वभाव) सिद्ध होने से उस निमित्त का यथार्थ ज्ञान हुए बिना रहता नहीं और उस काल में उपकारी का विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? परन्तु परमार्थ से परद्रव्य उपकारी है और परपदार्थ अनुपकारी है ऐसा माने तो उसके मिथ्या राग-द्वेष हो। वह इच्छा तो सार्थक हुई, भाई! विनय की हुई, विनय की। उस जात के स्वपर ज्ञान में स्वपर सामर्थ्य तो उस वक्त ज्ञान जानते हुए, पर कौन था, यही निमित्त था, यही पुस्तक था, यह वाणी थी और इनके शब्द निमित्त थे। वह तो ज्ञान का विवेक हुआ। उसे उस काल में साधकदशा है इसलिये राग में उपकार आये बिना रहे नहीं। हें?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, अधूरा है इसलिये आता है, वह चीज उपकारी है इसलिये आता है ऐसा नहीं। वह चीज उपकारी है इसलिये नहीं। अपने राग के काल में उस जात के ज्ञान के स्वपरप्रकाश सामर्थ्य में वह निमित्त ज्ञेय हुआ। उसके प्रति राग का काल है इसलिये, निमित्त के कारण भी नहीं, वह राग आये बिना रहे नहीं। फिर भी...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- फिर भी उसे उपचार कहते हैं, वह वास्तव में उपचार नहीं है। कहो, समझ में आया? ओहो..!

'कोई किसी को सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।' ओहो..! आचार्य मुनियोंने गीत गाये, गोम्मटसार में नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती, ओहो..! तेरे चरणकमल के प्रसाद से मैं भवसंसार तिर गया। तेरे चरणकमल के प्रसाद से संसार पार हुआ। यहाँ कहते हैं कि उपकारी किसी को मानना सो मिथ्यात्व है। दोनों का मेल कैसे (करना)? यह कहा न। मेल करना। विनय.. विनय.. विनय.. विनय.. निश्चय से विनय तो स्वभाव का करता है। निश्चय से विनय स्वभाव का करे और साधक है तो बाघकपना पड़ा है। इसलिये राग--गुरु का विनय आये बिना उसे रहता नहीं। अन्यथा वह निह्नव और मिथ्यादृष्टि होता है। यहाँ निश्चय से पर को उपकारी मान ले तो भी वह मिथ्याचारित्र और मिथ्यादृष्टि होता है।

'यह जीव ही अपने परिणामों में उन्हें सुखदायक--उपकारी मानकर...' परिणामों में, हाँ! वह पदार्थ नहीं है। पदार्थ कहीं सुखदायक नहीं है और दुःखदायक भी नहीं है। अहो..! जहाँ सुख का निमित्त हो (वहाँ) कल्पना तो स्वयं करता है। आहा..! पुत्र! तुझे देखकर मेरे हृदय में ठंडक होती है। आहाहा..! बापू, बापू करे तो हृदय में ठंडक होती है। मूढ है। वह राग तुझे आया है, राग से तुझे मीठास

लगती है। वह तो है वही है। दुश्मन आये, एक तो जानता हो कि यह मेरा विरोधी है, ऐसे में कोई प्रतिकूलता आये, हाय.. हाय..! यह क्या करेगा? ऐसे दुश्मन नहीं देखे ही अच्छा है, नज़र के सामने अच्छे नहीं। नज़र के सामने अच्छे नहीं, तो क्या ज्ञान में कोई दिक्कत होती है उस ज्ञेय को जानने में? समझ में आया? परन्तु अज्ञानी को वह सुखदायक है, ऐसा मानकर जो द्वेष होता है, वह स्वयं दुःखी होता है, उसमें पर में कुछ होता नहीं।

'**अपने परिणामों में उन्हें...**' अपने परिणामों में, हाँ! '**सुखदायक--उपकारी मानकर इष्ट जानता है...**' अपने परिणाम में सुखदायक मानकर और उपकारी जानकर इष्ट मानता है। '**अथवा दुःखदायक...**' अपने परिणाम में पर को '**दुःखदायक--अनुपकारी जानकर अनिष्ट मानता है;...**' देखो! दृष्टान्त देते हैं। कोई चीज इष्ट-अनिष्ट है नहीं। '**एक ही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, किसी को अनिष्ट लगता है।**' वही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, वही पदार्थ अनिष्ट लगता है। पदार्थ में इष्ट-अनिष्टता हो तो दो भंग पड़े नहीं। पदार्थ में ज्ञेयत्व है, प्रमेयत्व है कि जो प्रमाण का प्रमेय हो, ज्ञान का ज्ञेय हो। निमित्तता तो ज्ञेय की है। इष्ट-अनिष्ट की निमित्तता ज्ञेय को नहीं है। भाई! प्रमेय, ज्ञान में प्रमाण में प्रमेय हो ऐसी निमित्तता है। परन्तु प्रमाण में अथवा ज्ञान में वह चीज इष्ट-अनिष्ट भासित हो, ऐसी उसमें निमित्तता भी नहीं है। वह तो स्वयं उत्पन्न करता है। क्या कहा समझ में आया?

केवलज्ञान होने पर लोकालोक ज्ञेय है वह निमित्त बराबर, यहाँ ज्ञान नैमित्तिक होने पर, हाँ! नैमित्तिक हुआ इसलिये ज्ञेय निमित्त है। निमित्त में कोई भंग पड़ता नहीं। ज्ञेय का निमित्तपना ज्ञान में और अपने ज्ञान में भी अपने ज्ञान का निमित्तपना है। परन्तु कोई पदार्थ सुख-दुःखरूप अनिष्ट-इष्ट का निमित्त हो, ऐसी निमित्तता उसमें नहीं है। परन्तु अपने परिणाम में एक पदार्थ जिसे इष्ट कल्पे उसे निमित्त में इष्ट का आरोप करे। अनिष्ट कल्पे उसे अनिष्ट का आरोप दे। उस पदार्थ में इष्ट-अनिष्टता नहीं है। वह पदार्थ ज्ञेय है तो वह पदार्थ ज्ञानी को ज्ञेयरूप होता है। समकित से लेकर केवलज्ञान (पर्यंत) सब ज्ञान में पदार्थ ज्ञेयरूप एकधारा से बहता है। वह तो वस्तु का स्वभाव है। हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ। लेकिन फिर भी वह इष्ट-अनिष्ट तो है ही नहीं। इष्ट-अनिष्ट है नहीं और आरोपकर ज्ञानी कहे वह अलग वस्तु है, अज्ञानी तो उस पदार्थ को ही इष्ट-अनिष्ट मान बैठा है। वस्तु ही ऐसी हो गयी है।

देखो! '**एक ही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, किसी को अनिष्ट लगता है।**' यह तो

अलग दृष्टान्त है। परन्तु सर्वज्ञ की वाणी लो, भाई! समयसार लो, ... आहाहा..! यह समयसार प्रकाशित होने से हमारा मान गया, इज्जत गयी। लो, वस्तु तो वही है। छिपा दो, ढक दो। समझे? भण्डार में रख दो, समयसार अभी नहीं पढ़ते। लो, समयसार तो ज्ञान का ज्ञेय है, परन्तु उसे ऐसा लगा कि यह आने से मेरी इज्जत रही, मेरी शिक्षा पर पानी फिर जाता है, जगत मुझे मान देता नहीं है और इस समयसार में सब मान चला जाता है। वह समयसार तो समयसार है, शास्त्र तो शास्त्र है और शास्त्र ज्ञान का ज्ञेय है। परन्तु अज्ञानी उसे अनिष्ट मानकर अपने परिणाम में द्वेष करता है। उसी को इष्ट मानकर अज्ञानी राग से आरोप... राग से निश्चय से मानता है। आरोप से माने तो निश्चय से दूसरी बात रह गयी है। समझ में आया? शास्त्र ज्ञान में एक निमित्त है, भगवान की प्रतिमा भक्ति में निमित्त है, वह तो स्वयं को उस काल में राग अपने कारण हुआ उसमें निमित्त हुआ, इसलिये निश्चय से वह पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं हुआ। समझ में आया?

और कोई ऐसा कहे कि यह समयसार लो तो (उसमें) आत्मा (दर्शाया है), अतः निश्चित ही समयसार में अन्य ग्रंथो से अधिक प्रियता ही है। निश्चय से प्रियता है, ऐसी बात है नहीं। वह तो जगत के परमाणु की पर्याय है। उस पर्याय में कोई अंतर नहीं है। तब, अपनी पर्याय में उस जात का ज्ञान होनेवाला है ऐसा निमित्त सामने होता है। निमित्त के कारण पर्याय पलटी नहीं है और पर्याय के कारण निमित्त आया नहीं है। और पर्याय प्रगट हुई इसलिये निमित्त इष्ट है ऐसा भी नहीं है। कहो, दलीचंदभाई!

मुमुक्षु :-- हेय-उपादेय...

उत्तर :-- हेय-उपादेय, यह विकार हेय और स्वभाव उपादेय। पहले इष्ट-अनिष्ट का कहा न। विभाव हेय, स्वभाव उपादेय। वह भी अमुक भूमिका में। परमार्थ से तो जीव तो अकेला ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें हेय-उपादेय सब आ जाता है। राग भी ज्ञान का ज्ञेय है, कहो। वह ज्ञेय है लेकिन छूट जाता है इसलिये हेय कहा है, बाकी निश्चय से तो वह ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु ज्ञान सम्यक् होने पर निमित्त कैसा है उसका उसे ज्ञान होता है। फिर भी इष्ट-अनिष्ट की कल्पना सम्यक्ज्ञान में होती नहीं। मिथ्याज्ञान तो इष्ट-अनिष्ट पर को कल्पना करके इसलिये मिथ्याचारित्र कहने में आता है।

लो, यहाँ दृष्टान्त तो दिया है साधारण, हाँ! **'जैसे--जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे मोटा वस्त्र इष्ट लगता है...'** वस्त्र ही नहीं था ऐसे गरीब मनुष्य को मोटा वस्त्र दो, मोटा। चार.. क्या कहते हैं? चार तारी ओढ़ने की मोटी खादी की चादर।

गरीब मनुष्य को दो अच्छी लगे, लो। और सेठ को दो तो कहे, अरे..! ये क्या? **'जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे मोटा वस्त्र इष्ट लगता है और जिसे पतला वस्त्र मिलता है उसे वह अनिष्ट लगता है।'** समझ में आया? जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे इष्ट लगे **'और जिसे पतला वस्त्र मिलता है उसे वह अनिष्ट लगता है।'** मलमल का सरबती कपड़ा मिलता हो उसे तीन तारी मोटी ओढ़ने की चादर दे (तो उसे अनिष्ट लगता है)। चादर तो वही है। हैं! गरीब मनुष्य को पैसा न हो और ऐसे ... मिले तो इष्ट लगे और बड़े पैसेवाले सामने देने जाये, लो, आप को पुत्र नहीं है, ऐसा है। हमें शादी करने का भाव नहीं है। लेकिन आप को पुत्र-पुत्री नहीं है। राजा को सामने से देने जाये। भाई! राजा को देने जाये। पैंसठ साल का हो और सोलह (वर्ष की कन्या) देने जाये। पैंसठ साल का हो तो भी देने जाये कि लो। (राजा कहे), मुझे अब शादी नहीं करनी है। जो भी हो, एक पुत्र होगा तो मेरी पुत्री को ठीक रहेगा, लो। समझे न? राजकोट का दरबार हता, वह बुढ़ा था। पैंसठ साल का था न? हम लोग गये थे, प्रवचन करने वहाँ गये थे। बड़ी उम्र, औरत छोटी उम्र की। ... फिर कहे, एकाद बालक हो तो पीछे से दो-पाँच हज़ार की आजीविका शुरू हो जायेगी। देखो! और अन्य साधारण को मिलता न हो, पैसा देकर मिले तो भी प्रसन्न हो। दूसरे को सामने से चलाकर पैसा देने आये। वह चीज इष्ट-अनिष्ट नहीं है। उसकी कल्पना के काल में वह कल्पना उत्पन्न करता है और आरोप करता है पर में कि पर मुझे सुखदायक और दुःखदायक होता है। कहो, समझ में आया? यह तो दृष्टान्त साधारण वस्त्र का दिया है।

ऐसे कोई भी चीज लो। जब जोर से वमन हुआ हो और खीर और चूरमा के लड्डु पड़े हो, साड़े दस बजे खाने के लिये बनाये हो। दाल, चावल, रोटी, सब्जी अथवा चूरमा का लड्डु (बनाया है)। वमन हुआ, इतना जोर से वमन हुआ कि छठी का दूध निकल गया। लड्डु परोसें? बापू! अभी लड्डु? आधे घण्टे पहले तो लड्डु मीठा लगता था, इष्ट था। अनिष्ट कैसे हो गया? यहाँ तो अब चूरण खाने का होश नहीं है। चूरण, चूरण। चूरमा तो नहीं लेकिन, चूरमा तो नहीं लेकिन चूरण लेना हो तो चूरण लेने का होश नहीं है। वमन होगा, लेने के साथ ही वमन होगा। पेट में कुछ नहीं रहेगा। चूरण लूँगा तो भी नहीं रहेगा। क्यों भाई होता है न? चूरण ले, दवाई है, ... लो, इष्ट लगता था न? क्षण में हो गया अनिष्ट। कल्पना है कि नहीं तेरी? किसीको ऐसा लगे। समझ में आया?

'सूकरादि को विष्टा इष्ट लगती है,...' सूकर.. सूकर, सूकर होता है न? सूकर को विष्टा अच्छी लगती है। विष्टा नर्म पड़ी हो, ऐसी चाटे मानो रबड़ी चाटता

हो। उसे '**विष्टा इष्ट लगती है,...**' लो, सूकर को ... '**देवादिक को अनिष्ट लगती है।**' देवों को विष्टा अनिष्ट लगती है। मनुष्य को विष्टा पड़ी हो, पायखाना पड़ा हो तो उंहुं.. (करे)। पायखाना घर में रखा हो और वह सुधरा हुआ मनुष्य भोजन करने बैठा हो, ऐसे में कोई जंगल जाता हो, और जंगल में हवा चली हो... उंहुं... भोजन करते समय ही यह कौन बैठा है? तूने पायखाना बनवाया है और तेरा घर का सदस्य दस्त करने को जाता है। तुझे क्या हुआ? मुफ्त का मानकर कल्पना राग-द्वेष और इष्ट-अनिष्ट मानकर ऐसा करता है। दो साल का लड़का साथ में बैठा हो उसे कहे, चल, चल खिलाता हूँ। ऐसे में वहाँ टट्टी करे तो.. उंहुं... क्षण में इष्ट लगता था, अब, बालक ने टट्टी की और उसके छींटे थाली में गिरते हो, ले जाओ इसे, कौन है? अरे..! ले जाओ इसे। लेकिन बापू! आपने ही भोजन के लिये बुलाया था। भोजन करने के समय तो आपने बुलाया था कि, चल, चल। मेरे साथ थाली में खाने को साथ में चल। पुनः कहता है, ... भोजन में गिरा, हाय.. हाय..!

(बरसाद) पंद्रह दिन देर से आया होता तो... भले ही बिना मौसिम की बारिश हुई होती, पंद्रह दिन देर से आया होता तो... घर में माल आने के बाद आया होता तो... कल्पना है कि नहीं? '**किसी को मेघवर्षा इष्ट लगती है, किसी को अनिष्ट लगती है।**' उस वक्त, मेंढक, चीटियाँ, सर्प के बच्चे पानी में बह जाते हैं। जंगल में देखो। वही बरसाद, वही पानी नदी में आये तो कहे, पानी तो आया, राहत रहेगी, चार इँच आया तो .. गाँव में लोग माने। और जंगल में जानवर, हिरन, मेंढक पानी में बहकर मर जाते हैं। सर्प, बिल में पानी में घुसता है तो मर जाते हैं। निकलते हैं न? मरे हुए निकलते हैं। वह किसी को इष्ट लगता है। लो, वही बरसाद किसी को मूसलाधार अच्छा लगे तो दूसरे को ऐसा होता है.. अरेरे..! पंद्रह मिनिट देर से आया होता तो माल घर के अन्दर ले लेता। अरे..! माल बिगड़ गया। पूरी मौसिम व्यर्थ गयी। ऐसी कल्पना (करता) है।

... पर्याय से परिणमती नहीं। अज्ञानी को पदार्थ, जानना-देखना मेरा स्वभाव है, उसके कारण उसका परिणमन होता है, उसका कर्ता वह द्रव्य है ऐसा मानता नहीं। '**इसी प्रकार अन्य जानना।**' दो दृष्टान्त दिये, इसी प्रकार अन्य भी जानना। इकलौता पुत्र हुआ हो और इच्छानुसार काम करे तो अच्छा लगता है। इकलौता पुत्र भी यदि इच्छानुसार कार्य न करता हो और स्वयं को ऐसी कोई ... आन पड़ी हो और पुत्र यदि बीच में आता हो तो (ऐसा भाव करता है कि) मार डालूँ, पुत्र को मार डालूँ। बहुत अच्छा कहता था न? हमारी लिखावट हुई है उसमें यह विरोध करता है। मार डालते हैं न, पुत्र को मार डाले। पुत्र मार डाले, युवान इकलौता पुत्र। हम जिस चाल

से चलते हैं, हमारी चाल में अटकायत करे तो जिंदा न रहने दे, पति को मार दें और पुत्र को भी मार दे। इष्ट था न? कल्पना, अज्ञानी कल्पना है। अपनी मान्यता से राग-द्वेष से कल्पना कर रखी है कि यह मुझे प्रिय है। वस्तु में प्रियता-अप्रियता चित्रित नहीं किया है। वहाँ रजीस्टर नहीं कर रखा है कि यह इष्ट-अनिष्ट है। तेरी कल्पना ने इष्ट-अनिष्टपना उत्पन्न किया है। वह तेरी कल्पना ही असत्य है। समझ में आया?

अतः कहते हैं, '**तथा इसी प्रकार एक जीव को भी एक ही पदार्थ किसी काल में इष्ट लगता है,...**' यह तो सामान्य बात कही। वही पदार्थ कोई जीव को, कोई जीव की बात कही, जो पहली बात कही वह। वही पदार्थ, '**एक ही पदार्थ किसी काल में इष्ट लगता है,...**' यह दृष्टान्त इष्ट के लिये कहा। वही पुत्र इष्ट लगे, तब '**किसी काल में अनिष्ट लगता है।**' सर्दी में गर्म कपड़ा अच्छा लगे और कड़ी धूप ११८ डिग्री की हो तब... लो बापू! यह गर्म कोट ओढ़ने के लिये, ऊनका बड़ा कम्बल ओढने को देता है। मूर्ख लगता है। गर्मी में होता है? लेकिन बापू! उस दिन तो कहते थे, सर्दी हो तब... लेकिन वह हिमवर्षा के समय, अभी...? समझ में आया?

एक ही काल में कोई पदार्थ इष्ट लगता है, कोई काल में अनिष्ट लगता है। समझ में आया? वही पदार्थ। सर्दी में खूब गर्म पानी स्नान करने के लिये दिया हो तो अच्छा लगता है। गर्मी में दिया हो तो.. खूब गर्मी हो और बारह बजे पसीने से तरबतर होकर आया हो और धूप में पाटला रखकर बिठाया हो और खूब गर्म पानी दिया। लो, वही चीज, जगत की पर्याय, परिणमित पदार्थ एक बार ठीक लगता है, दूसरे समय अनिष्ट लगता है। '**यह जीव जिसे मुख्य रूप से इष्ट मानता है, वह भी अनिष्ट होता देखा जाता है।**'

अब तीसरी बात समीप की ली है। अन्य इष्ट तो ठीक, लेकिन कहते हैं, मुख्यरूप से इष्टरूप माने वह भी अनिष्ट होता देखा जाता है। '**जैसे शरीर इष्ट है...**' लो। वह तो प्रिय लगता है। '**परन्तु रोगादि सहित हो तब अनिष्ट हो जाता है;...**' शरीर ऐसा सड़ जाये, बिगड़े, लट पड़े, जलन हो, अब शरीर छूट जाय तो अच्छा। कहाँ से ऐसी अक्कल आयी? पहले तो कहता था कि पचास-सौ साल जीवित रहूँ तो अच्छा। लट पड़ी। होता है न? शीतला निकलते हैं, शीतला निकलते हैं। दाने-दाने में लट पड़ जाती है, दाने-दाने में। एक बार कहा था न? एक स्त्री को दाने-दाने में लट पड़ गयी थी। युवान स्त्री, हाँ! माँ! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये हैं। ये कहाँ के आये? बहिन! समता रखो। यह कोई पूर्व का है। वह प्राप्त

होने पर अनिष्ट लगता है। वही शरीर विषय लेते समय, भोग के समय, मक्खन के पिण्ड जैसा अच्छा लगता था वह, जब दाने में (लट) पड़ी, पलंग में शरीर को ऐसे करे तो लट का ढेर गिरे, दूसरी ओर करे तो उस ओर लट का ढेर। क्योंकि दाने-दाने में लट पड़ी थी। दाने पड़े, रोम-रोम में। और उसे ही मुलायम देखकर प्रसन्न होता हो, अच्छा हो तब। साबून, एक-एक रूपये का साबून लेकर, गर्म पानी और उसमें सुगंधी तेल डाले हुए पानी में मसलता हो, मसलते वक्त प्रसन्न होता हो। वही पदार्थ जो तेरा इष्ट लगता है, वह जब दाने-दाने में लट पड़ी, बापू! तुझे अनिष्ट लगता है। वह पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है। तेरी मान्यता उसको इष्ट-अनिष्ट का आरोप करके बड़ा दरवाजा खड़ा किया है। उसमें से राग-द्वेषमें से .. आये। राग ने इष्टपना माना, द्वेष ने अनिष्टपना माना। राग-द्वेष में ... लेकिन ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ, कोई चीज मुझे इष्ट-अनिष्ट नहीं है। उसके काल में परिणमन के काल में परिणमेगी।

देखोन! झामर (नेत्र का एक रोग) होता है, बहुत पीड़ा होती है न? बहुत पीड़ा झामर की, ऐसे सर पटके सर। और माथा सुन्दर हो और एकसमान हो तो दूसरे को खुल्ला करके दिखाना चाहे, बिलकुल सर पर से निकालकर। और वही जब झामरवाले की आँखे फूट जाये तो परदा रखने लगता है। किसी को (दिखे नहीं)। वही इष्ट वस्तु, अनिष्ट हो गयी। कल्पना में, हाँ! (पदार्थ में) तो जो हुआ है सो हुआ है। सर पटके, आहाहा..! यह पीड़ा। दूसरे रोग सहन हो जाये, लेकिन यह झामर सहन नहीं होता। कड़ा झामर होता है कड़ा, हाँ! ऐसा झामर की सर फोड़ दे ऐसा झामर। साधारण हो उसमें कुछ नहीं। वही शरीर जो अच्छा लगता था, वही अनिष्ट हो गया। वस्तु तो वस्तु के काल में परिणमन करके अवस्था हुआ करती है। अतः अवसर आने पर अनिष्टता देखी जाती है। '**इत्यादि जानना।**' लो, मुख्य की बात करी, हाँ! राग-द्वेष करना वह मिथ्यादर्शनपूर्वक का मिथ्याचारित्र है। इसलिये वह निरर्थक है। ज्ञाता-दृष्टा रहना और राग हो उसको जानना, इष्ट-अनिष्ट की कल्पना नहीं करनी, वह वस्तु के स्वभाव की शांति का उपाय है।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)